ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-4* July- 2021
Anthology : The Research

# पुरातनी नारी शिक्षा पर विवेचनात्मक दृष्टि
# Critical View On Old Women's Education

Paper Submission: 15/07/2021, Date of Acceptance: 25/07/2021, Date of Publication: 26/07/2021

**अनीता मीना**
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
राजकीय रामेश्वरी देवी कन्या महाविद्यालय,
भरतपुर, राजस्थान, भारत

एक बालिका के रूप में, युवती के रूप में, गृहिणी के रूप में तथा पत्नी के रूप में स्त्री का सामाजिक दायित्वबोध वस्तुतः एक तप है। वह एक नहीं दो परिवारों के बीच एक सेतु बनती है। दो भिन्न विचारों के भिन्न परिवेश के लोगों को जोड़ती है, अतः उसका कर्तव्य बड़ी ही तीक्ष्ण धारा से गुजरता है। उसके व्यक्तित्व में यदि संतुलन नहीं है तो वह निश्चय ही कष्ट में पड़ती है और कष्ट में डालती है। व्यक्तित्व के संतुलन में शिक्षा का सुसंस्कृत होना अनिवार्य है। प्राचीनकालीन समाज में नारियों की स्थिति बहुत अच्छी थी, उन्हें समाज में सम्मान प्राप्त था, वे विद्या और बुद्धि से सम्पन्न थी, देव रमणियाँ यज्ञ में आती थी, इला धर्म का उपदेश देती थी। घोषा नामक नारी ब्रह्मवादिनी थी, उसने अनेक सूक्तों का स्मरण किया था। इसी प्रकार की उल्लेखनीय स्त्रियों में अपाला, शची, अदिति, विश्ववारा, आत्रेयी, श्रद्धा, वैश्ववती, यमी और वाग्देवी के नाम लिए जा सकते हैं। विदुषी नारियों में गार्गी और मैत्रेयी के नाम से सभी परिचित नहीं है, इनकी ज्ञान गरिमा की परिचायक बृहदारण्कोपनिषद है। गार्गी ने जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के समक्ष जो तत्त्व ज्ञान विषयक प्रश्न उपस्थित किये थे, वे उसे आज भी अमर बनाये हुए हैं।

The social responsibility of a woman as a girl, as a young woman, as a housewife and as a wife is actually a penance. She becomes a bridge between not one but two families. Connects people of different surroundings of two different views, so his duty passes through a very sharp current. If there is no balance in her personality then she definitely gets into trouble and puts her in trouble. In the balance of personality, it is necessary to have culture of education. In the ancient society, the position of women was very good, they were respected in the society, they were full of knowledge and wisdom, the gods used to come to the yajna, preached religion. A woman named Ghosha was a Brahmavadini, she had memorized many hymns. Apala, Shachi, Aditi, Vishwavara, Atreyi, Shraddha, Vaishvavati, Yami and Vagdevi can be named among such notable women. Not everyone is familiar with the names of Gargi and Maitreyi among the learned women, their knowledge is the Brihadarankopanishad, a sign of dignity. The questions about the philosophy that Gargi had presented to Yajnavalkya in Janaka's assembly, they have made him immortal even today.

**मुख्य शब्दः** पुरातनी नारी शिक्षा पर विवेचनात्मक दृष्टि, सामाजिक, दायित्वबोध,राचीनकालीन, ब्रह्मवादिनी, आध्यात्मिक, निर्देशिका, उत्कृष्टता, किशोरावस्था, दार्शनिक, वेदाध्ययन,परम्परा आचार्या, उपाध्याया।

Critical vision on ancient women's education, social, sense of responsibility, antiquity, Brahmavadini, Spiritual, Directory, Excellence, Adolescence, Philosopher, Veda Study, Tradition Acharya, Upadhyaya.

**प्रस्तावना**

भारत की शिक्षा-संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। इसका निर्माण मानव जाति की श्रेष्ठतम विचारधाराओं से हुआ है। अतः इसके चिन्तन में, व्यवहार में तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में सदैव से चमत्कारी परिवर्तन परिवर्धन संशोधन होते रहे हैं। भारत में नारी को सदैव एक सम्मान, एक पूजा की दृष्टि से देखा गया-'यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। मातृशक्ति स्वरूपा एवं पतिव्रतपरायणा नारी इस सृष्टि, समाज एवं मानव जीवन की आधारशिला है। वह न केवल जननी मात्र है अपितु शिक्षिका, प्रशिक्षिका, निर्देशिका, पोषिका एवं रक्षिका भी है। माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है - 'नास्ति मातृसमो गुरुः'। सम्भवतः इसीलिये कहा जाता है कि सूर्य जैसा तेज, चन्द्रमा जैसी शीतलता, समुद्र जैसा गाम्भीर्य, पर्वत जैसी दृढ़ता, पृथिवी जैसी क्षमा, आकाश जैसी विशालता तथा वृक्षों जैसा त्याग यदि एक ही स्थान पर देखना है तो नारी हृदय को देखना चाहिए। बराबर का मान-सम्मान, बराबरी का दर्जा, सहभागिता, समता की सामाजिक स्थापना। यह समानता वैदिक काल से ही भारतीय समाज में विकसित हो रही थी। वैदिक सूक्तों में xप्रकृति को स्त्री या देवी के रूप में ही वर्णित किया गया है - माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः - देश या राष्ट्र को भी मातृभूमि ही कहा गया। वस्तुतः भारतीय जनमानस ने सृष्टि के लगभग आरम्भिक काल में ही द्विधा विभक्त इस जैविक सृष्टि के मूलभूत रहस्यों को समझना शुरु कर दिया था और उसके परिष्कार के लिये नाना उपायों को स्वीकार करना शुरु कर दिया था जिससे उसका सांस्कृतिक परिवेश सुदृढ होता चला गया। वेदों में हमें अपाला, गार्गी, मैत्रेयी, विश्ववारा, विरजा, जैसी अनेक ऋषिकाओं के सूक्त मिलते हैं जो हमें ज्ञान के उच्चतम धरातल तक ले जाते हैं। वेदों के पश्चात् स्मृतिकाल में तो सामाजिक संस्थायें इतनी परिष्कृत हो गई थी कि पुरुष एवं स्त्री के प्राकृतिक विभेद को ठीक-ठीक पहचानने के कारण पुरुषों के लिये तथा स्त्रियों के लिये पृथक्-पृथक् आचार संहिताओं का निर्माण होने लगा था। पृथकता विभाजन नहीं है। पृथकता निजता की रक्षा और महत्ता का संवर्धन है। देश काल एवं पात्र के भेद को ठीक से परिभाषित किये बिना हम किसी व्यक्ति से न्याय नहीं कर सकते। हमें प्रत्येक कण क्षण और तृण को यदि ठीक से समझना है, सम्मान देना है तो हमें उस तत्त्व की देश काल तथा पात्र संबन्धी धारणाओं को परिभाषित करना ही होगा। उदाहरण के लिये एक बच्चा, एक किशोर, यक युवक और प्रौढ अलग-अलग समय

पर अलग-अलग देश में भिन्न -भिन्न आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न व्यवहार करता है अतः उसके लिये देश काल पात्र का निर्णायक शास्त्र भी भिन्न होगा।

शारीरिक संरचना के साथ ही मानसिक रचना का भी एक विकासक्रम है। पुरुष एवं स्त्रियों की शारीरिक संरचना के कारण भी उनसे समानता एवं वैषम्य के बिन्दुओं के उचित निर्धारण की क्षमता का विकास को इन सभी अवधारणाओं एवं विशेषताओं से जोड़कर देखा गया इसी से उसके विषय में कहा गया है कि स्त्री प्रकृति है। प्रकृति अर्थात् मूलतत्त्व सृष्टि का नियामक तत्त्व। प्रकृष्ट कृति है स्त्री। उत्तम रचना है स्त्री क्योंकि वह सदैव उत्तम के सृजन के लिये प्रयत्नशील रहती है। आध्यात्मिक भौतिक तथा दैवीय उत्कृष्टता के लिये सदैव सचेष्ट सतर्क और क्रियाशील रहने वाली प्राकृतिक संरचना या व्यवस्था का नाम है स्त्री। विश्व में जहाँ कहीं भी सृजन है, रचनाधर्मिता है, गढने की सामर्थ्य है वहाँ स्त्रीत्व मौजूद है। इसीलिये परमात्मा या ईश्वर को भी सर्वप्रथम माता ही गया है-'त्वमेव माता'।

स्त्रीत्व की धार जितनी पैनी होगी उतना ही आकर्षण प्रबल होगा। दैवीयता समाज को पाप से बचाती है। सौन्दर्य पाप से रक्षा करता है। आज भी एक सबल, आभायुक्त स्त्री हजारों पुरुषों पर भारी होती है। अतः भारतीय समाज व्यवस्था ने ऐसी दैवीय स्त्रियों को गढ़ा जो जीवन के हर क्षेत्र में एक मिसाल बनी। मदालसा, विदुला, कुन्ती गान्धारी इत्यादि के चरित्र इसके साक्षी हैं। दैहिक विकास के रूप में स्त्री शिशु, किशोरी, युवती, गृहिणी, माता आदि संज्ञाओं के रूप में हमारे समक्ष आती है। आज के कामकाजी समाज में यद्यपि पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली स्त्रियों का बाहुल्य हो गया है फिर भी क्या प्रत्येक समाज में प्रत्येक देश में उत्पन्न होने वाली स्त्रियों एवं वहाँ के समाज में स्त्री के प्राकृतिक स्वरूपों का सम्मान नहीं किया जाता। व्यवहार में भले ही विषमता हो विचार के स्तर पर स्त्रीत्व के प्राकृतिक उपादानों को न केवल पुरुषों के द्वारा स्वीकार किया जाता है अपितु स्त्रियों द्वारा भी स्वीकार किया जाता है। यदि हम स्त्री समाज को देखें तो हमें प्रत्येक स्तर पर एक समानता दिखाई देती है। पुत्र या पुत्री सन्तान दोनों के ही जन्म पर उत्सव का विधान है। 'जातस्य नामकरणसंस्कारं कुर्यात् पिता'। उत्पन्न सन्तति का नामकरण पिता करे। संस्कार से संरक्षित होता है जीवन। पुत्र की तरह पुत्री की भी लालन-पालन तथा शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध पिता को करना चाहिये। पर यह प्रबन्ध देश काल पात्रानुसार होना चाहिए। किशोरावस्था के प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ ही घर की माता-दादी आदि की भूमिका लड़कियों के प्रति बढ़ जाती है। किशोर मन में एकांत में उठने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों के क्षण में उसकी देखभाल बड़ी ही सूक्ष्मता तथा सरलता से की जानी चाहिये। जरा सी असावधानी से स्त्री की संरचना में जो विकृति आ सकती है उसकी भरपायी जीवन भर नहीं की जा सकती। अतः यह एक निर्विवाद तथ्य है कि स्त्रीत्व रक्षा के इस सोपान पर पारिवारिक-सामाजिक सुरक्षा का दायित्व सर्वाधिक है। प्राचीनकालीन भारत की नारी उच्च आदर्शों वाली, पति की सहयोगिनी और महान थी। आशय यह है कि उस काल में नारी की स्थिति सम्माननीय थी।

मध्य एवं वर्तमान काल की अपेक्षा प्राचीन काल में स्त्रियों की शिक्षा-सम्बन्धी व्यवस्था कहीं उच्चतर थी। बहुत सी नारियों ने वैदिक ऋचाएँ रची हैं, यथा-अत्रि-कुल की विश्ववारा ने ऋग्वेद का 5/28 वाला अंश रचा है, उसी कुल की अपाला ने ऋग्वेद का 8/91 वाला अंश रचा है, तथा घोषा काक्षीवती के नाम से ऋग्वेद का 10/39 वाला अंश कहा जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक ऋषि याज्ञवल्क्य की दो स्त्रियाँ थी, जिनमें मैत्रेयी सत्य ज्ञान की खोज में रहा करती थी और उसने अपने पति से ऐसा ही ज्ञान माँगा जो उसे अमर कर सके। विदेहराज जनक की राजसभा में कई एक उत्तर-प्रत्युत्तरकर्ता थे, जिनमें गार्गी वाचक्नवी का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। गार्गी वाचक्नवी ने याज्ञवल्क्य के दाँत खट्टे कर दिये थे। उसके प्रश्नों की बौछार से याज्ञवल्क्य की बुद्धि चकरा उठती थी। हारीत ने स्त्रियों के लिए उपनयन एवं वेदाध्ययन की व्यवस्था दी थी। आश्वलायनगृह्यसूत्र (3/4) में जहाँ कतिपय ऋषियों के तर्पण की व्यवस्था एवं वेदाध्ययन की व्यवस्था की गयी है वहीं गार्गी वाचक्नवी, वडवा प्रातिथेयी एवं सुलभा मैत्रेयी नामक तीन नारी शिक्षिकाओं के नाम भी आते हैं। नारी शिक्षिकाओं की परम्परा अवश्य रही होगी, क्योंकि पाणिनि (4/1/59 एवं 3/3/21) की काशिका वृत्ति ने 'आचार्या' एवं 'उपाध्याया' नामक शब्दों के साधनार्थ व्युत्पत्ति की है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य (भाग 2, पृ. 205, पाणिनि के 4/1/14 के वार्तिक 3 पर) में बताया है कि क्यों एवं कैसे ब्राह्मण नारी 'आपिशला' (जो आपिशलि का व्याकरण पढ़ती है) एवं क्यों 'काशकृत्स्ना' (जो काशकृत्स्न का मीमांसा ग्रन्थ पढ़ती है) कही जाती है। उन्होंने 'औदमेघाः' उपाधि की व्युत्पत्ति की है, जिसका तात्पर्य है 'औदमेघ्या नामक स्त्री शिक्षिका के शिष्य'। गोभिलगृह्यसूत्र (2/1/19-20) एवं काठकगृह्यसूत्र (25-23) से पता चलता है कि दुलहिनें पढ़ी-लिखी होती थी, क्योंकि उन्हें मन्त्रों का उच्चारण करना पड़ता था। स्पष्ट है, सूत्रकाल में स्त्रियाँ वेद के मन्त्रों का उच्चारण करती थी। वात्स्यायन के कामसूत्र (1/2/1-3) में आया है कि लड़कियों को अपने पिता के घर में कामसूत्र एवं इसके अन्य सहायक अंग (यथा 64 कलाएँ-गान, नाच, चित्रकारी आदि) सीखने चाहिए तथा विवाहोपरान्त पति की आज्ञा से इन्हें करना चाहिए। 64 कलाओं में प्रहेलिकाएँ, पुस्तकवाचन, काव्यसमस्या-पूरण, पिंगल एवं अलंकार का ज्ञान आदि भी सम्मिलित थे।

**अध्ययन का उद्देश्य**

प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य उद्देश्य यह है कि स्वतंत्रता पूर्व वैदिक काल से उत्तरवैदिक काल तक नारियों की शिक्षा व्यवस्था में क्या भूमिका रही है - उस पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालना। प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान नही रही है। इसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर उत्तर वैदिक काल तक अनेक उतार - चढ़ाव आते रहे हैं तथा उनके अधिकारों में तदनुरूप बदलाव भी होते रहे हैं। नारी समाज का वह अंग है जो व्यक्ति और समाज के स्तर पर अनेक भूमिकाओ को एक साथ ही निर्वाहित करती है। एक ही समय में वह एक से अधिक रूपों में जीवित रहती है और इन विभिन्न रूपों में वह एक साथ ही माता, बहन, पुत्री, प्रेयसी आदि रूपों में चित्रित होती है। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था। संस्थानिक रूप से स्त्रियों की अवनति उत्तर वैदिककाल से शुरू हुई। उन पर अनेक प्रकार के निर्योग्यताओं का आरोपण कर दियां गया। उनके लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा। उनकी स्वतंत्रता और उन्मुक्तता पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाये जाने लगे। मध्यकाल में इनकी स्थिति और भी दयनीय हो गयी। पर्दा प्रथा इस सीमा तक बढ़ गई कि स्त्रियों के लिए कठोर एकान्त नियम बना दिए गये। शिक्षण की सुविधा पूर्णरूपेण समाप्त हो गई। प्रस्तुत अध्ययन में वैदिक कालीन, उत्तरवैदिक कालीन (बौद्ध, मुगल व ब्रिटिशकाल) शिक्षा में नारियों के स्थापना पर प्रकाश डाला गया है।

**वेदों में नारी शिक्षा**

वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में महिलाओं को गरिमामय स्थान प्राप्त था। उसे देवी, सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी, सहचरी माना जाता था। वेदों में नारी की शिक्षा, शील, गुण, कर्त्तव्य और अधिकारों का विशद वर्णन है। इस प्रकार का वर्णन संभवतः संसार के किसी भी धर्मग्रन्थ में नहीं है। चारों वेदों में सैकड़ों नारी विषयक मन्त्र दिये गये हैं। जिनसे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में नारी का समाज में विशेष स्थान था। तथा पुरुषों की भाँति उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में बराबर का स्थान प्राप्त था। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के समाज में नारियों को बहुत महत्त्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था थी। स्त्रियों की राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। ऋग्वेद में 24 और अथर्ववेद में 5 वैदिक विदुषियों का उल्लेख मिलता है। वेदों में नारी को ज्ञान विज्ञान में निपुण होने के कारण उसे ब्रह्मा बताया गया है। वेदों का अभिप्राय है कि - नारी समाज में अग्रणी है। नारी सरस्वती तुल्य प्रतिष्ठित है। नारी शील, राष्ट्रीय रक्षा तथा कर्त्तव्य की खान है। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी, परिवार तथा समाज में उन्हे सम्मान प्राप्त था। उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था।

वैदिक साहित्य में गार्गी, मैत्रेयी, शकुन्तला आदि अनेक विदुषी स्त्रियों की चर्चा मिलने से इस बात का संकेत भी मिलता है कि वैदिक काल में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त था। परन्तु केवल गिनी चुनी कुछ ही विदुषी स्त्रियों की चर्चा मिलने से पता चलता है कि सम्भवतः इस समय स्त्री शिक्षा अत्यन्त सीमित

थी तथा केवल समाज के सम्भ्रान्त परिवारों की लड़कियाँ ही शिक्षा प्राप्ति के अवसरों का सदुपयोग कर पाती थी। उस समय स्त्रियों के लिए पृथक् शिक्षा संस्थाओं की व्यवस्था नहीं थी, जिसके कारण वे पुरुषों के साथ ही शिक्षा प्राप्त करती थी अर्थात् उस समय सह शिक्षा का प्रचलन था। वास्तव में उस समय स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख उत्तदायित्व परिवार पर होता था जहाँ पिता-पति अथवा कुलगुरु परिवार की स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करते थे। स्पष्ट है कि उस काल में स्त्रियों की शिक्षा के लिए कोई सुसंगठित व्यवस्था नहीं थी। इतिहास के प्रारम्भिक रूप को देखने से ज्ञात होता है कि शुरू से ही नारी परिवार का केन्द्र बिन्दु रही है। ऋग्वेद काल में स्त्रियां उस समय की सर्वोच्च शिक्षा अर्थात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकतीं थीं। ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय की नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरूष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है। वैदिक काल में परिवार के सभी कार्यों और भूमिकाओं में पत्नी को पति के समान अधिकार प्राप्त थे। नारियां शिक्षा ग्रहण करने के अलावा पति के साथ यज्ञ का सम्पादन भी करतीं थीं। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, घोसला, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामायनी, विश्वम्भरा, देवयानी आदि विदुषियों के नाम प्राप्त होते हैं। उत्तरवैदिक काल में भी स्त्रियों की प्रतिष्ठा बनी रही। इसके अलावा शासन, सेना, राज्य-व्यवस्था में स्त्रियों के योगदान के प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति से संबंधित दो विचार के सम्प्रदाय मिलते हैं। एक सम्प्रदाय के समर्थकों का कहना है कि महिलायें 'पुरूषों के बराबर' थीं, जबकि दूसरे सम्प्रदाय के समर्थकों की मान्यता है कि महिलाओं का न केवल अपमान ही होता था बल्कि उनके प्रति घृणा भी की जाती थी। वैदिक सूत्रों के आधार पर उक्त काल खण्डों में स्त्री की गौरवपूर्ण एवं सम्मानजनक स्थिति स्वीकार करते है तथा परवर्ती सूत्रों में उत्तरवैदिक काल से स्त्रियों की निम्नतर स्थिति के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। उत्तर वैदिक काल में बाल-विवाह का प्रचलन प्रारम्भ होने के कारण स्त्रियों की शिक्षा में व्यवधान उत्पन्न होने लगे थे। फिर भी यह मान्यता स्पष्ट रूप से मुखरित था कि वास्तव में गृहस्थाश्रम की सफलता नारी पर आधरित है। इसलिए नारी शिक्षित होना चाहिए।

पौराणिक काल में शक्ति का स्वरूप मानकर उसकी आराधना की जाती रही है। भारतीय संस्कृति मातृशक्ति में लक्ष्मी, सरस्वती एवं दुर्गा इन तीनों रूपों को निहित मानती है। लक्ष्मी रूप 'सौन्दर्य, उदारता एवं आत्मनिर्भरता' का प्रतीक है। सरस्वती रूप 'विद्या, बुद्धि एवं विवेक' का प्रतीक है तथा दुर्गा 'शासन एवं शक्ति' की प्रतीक है। इस प्रकार नारी 'सौन्दर्य, माधुर्य एवं ऐश्वर्य' इन तीनों रूपों की समन्वित कृति है।

**बौद्धकाल में नारी शिक्षा**

बौद्ध काल में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की अनुमति देकर स्त्री शिक्षा को एक नया आयाम दिया, जिसके कारण स्त्री शिक्षा को एक नया जीवन मिला। परन्तु यह शिक्षा भी कुलीन घरानों की स्त्रियों तक ही सीमित रही। परिणामतः बहुत समय तक सामान्य स्त्रियों की शिक्षा लगभग उपेक्षित ही रहीं।

**मुगलकाल में नारी शिक्षा**

मुगल काल में भी सामान्य स्त्रियों की शिक्षा उपेक्षित थी। इस काल में बाल-विवाह तथा पर्दा प्रथा का प्रचलन होने के कारण छोटी-छोटी बालिकाओं के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों शिक्षा प्राप्ति के अवसरों से प्रायः वञ्चित ही रह जाती थी। इतिहास के अवलोकन से प्रतीत होता है कि उस समय अल्पायु की बालिकाओं को कुछ वर्षों की प्राथमिक शिक्षा मिल जाती थी। मध्यम वर्ग के हिन्दुओं की लड़कियों परिवार में पारिवारिक शिक्षा के रूप में अक्षर ज्ञान तथा धार्मिक साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर लेती थी। शाही घरानों तथा समाज के धनी वर्गों की बालिकायें अपने घरों में शिक्षा प्राप्त करती थी। सम्भ्रान्त कुलीन तथा शाही परिवार प्रायः अपने घरों पर ही मौलवी अथवा अन्य विद्वानों को बुलाकर परिवार की स्त्रियों को शिक्षा देने की व्यवस्था कर लेते थे। उस काल की अनेक हिन्दु तथा मुस्लिम विदुषियों की चर्चा इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टिगोचर होती है। रजिया सुल्ताना, चाँदवीवी, गुलवदन, जेबुनिसा, रानी रूपमती, अहिल्याबाई, माता जीजाबाई आदि विदुषियों के नाम मध्यकालीन भारत के स्त्री शिक्षा के इतिहास में स्मरणीय है। परन्तु सामान्य वर्ग की स्त्रियों को शिक्षा प्राप्ति के अवसर दुर्लभ ही रहते थे।

**ब्रिटिश काल में नारी शिक्षा**

ब्रिटिश शासन के प्रथम चरण में स्त्री शिक्षा को अनावश्यक समझ कर उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत में अपना प्रशासन चलाने के लिए स्त्री लिपिकों अथवा प्रशासकों की आवश्यकता नहीं थी। स्त्रियों के अनेक अंधविश्वासों से घिरे रहने तथा भारतीयों का दृष्टिकोण अत्यन्त रूढ़िवादी होने के कारण भी सम्भवतः ईस्ट इंडिया कम्पनी ने स्त्री शिक्षा में कोई रुचि नहीं ली। कम्पनी शासन के दौरान स्त्री शिक्षा का प्रसार मिशनरियों तथा अन्य सामाजिक संस्थानों के व्यक्तिगत प्रयासों से प्रारम्भ हुआ। मिशनरियों ने अनेक बालिका विद्यालयों की स्थापना की। जिनमें सहस्रों लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण करती थी। सन् 1854 में वुड के आदेशपत्र में अधिकारिक तौर पर सबसे पहले स्त्री शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया गया तथा स्त्री शिक्षा के प्रसार के सभी सम्भव प्रयास किये जाने की सिफारिश की गई। जिसके परिणाम स्वरूप लड़कियों के लिए अनेक स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई। सन् 1902 तक स्त्री शिक्षा ने एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया था । परिणामतः माता-पिता अपनी लड़कियों को शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता समसूस करने लगे थे। तथा शिक्षा विभाग ने लड़कियों के लिए अलग बालिका विद्यालय खोलने प्रारम्भ कर दिये थे। आर्य समाज, ब्रह्म समाज जैसी समाज सुधारक संस्थाओं ने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया था, जिसके परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा का तीव्र गति से विस्तार हुआ था। सन् 1917 से सन् 1947 तक स्त्री शिक्षा का विकास अत्यन्त तीव्र गेति से हुआ। इस काल में स्त्रियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरु कर दिया था। इसी समय भारतीय नारी संगठन तथा राष्ट्रीय महिला परिषद् की स्थापना हुई। सन् 1927 में प्रथम अखिल भारतीय नारी सम्मेलन हुई। इसी दौरान बाल विवाह पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए 'शारदा एक्ट' पारित हुआ। इन सभी समाज सुधारक कार्यों में स्त्री शिक्षा का विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान मिला। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में लगभग तीस हजार नारी शिक्षा संस्थायें थी जिनमें लगभग पचास लाख स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही थी। राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा फुले जैसे समाज सुधारकों ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के विशेष प्रयासों से बालिका विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई। लार्ड कर्जन के महिला शिक्षा को समर्थन के परिणाम स्वरूप सन् 1913 में शिक्षा नीति का सरकारी प्रस्ताव पेश हुआ। यहाँ से महिला शिक्षा कदम दर कदम आगे बढ़ी। सन् 1916 में बम्बई में भारतीय महिला विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। समाज सुधारकों एवं महात्मा गाँधी द्वारा सञ्चालित आन्दोलनों के प्रभाव से माता-पिता तथा अभिभावकों के मन में बालिकाओं के प्रति समानता का भाव विकसित हुआ। सन् 1926 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस आयोजन ने समाज पर विशेष प्रभाव डाला। हटांग कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में महिला एवं पुरुषों दोनों वर्गों के लिए शिक्षा के समान अधिकार की अनुशंसा की। साथ ही दोनों की शिक्षा के विकास के लिए नई शिक्षा योजना के विकास के लिए नई शिक्षा योजना के निर्माण पर बल दिया। इस दौर में नारी शिक्षा की सर्वांगीण प्रगति हुई।

**निष्कर्ष**

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महिला शिक्षा समाज का आधार है। समाज द्वारा पुरूष को शिक्षित करने का लाभ केवल मात्र पुरूष को होता है जबकि महिला शिक्षा का स्पष्ट लाभ परिवार, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र को होता है। चूंकि महिला ही माता के रूप में बच्चों की प्रथम अध्यापक बनती है। महिला शिक्षा एवं संस्कृति को सभी क्षेत्रों में पर्याप्त समर्थन मिला। यद्यपि कुछ समय तक महिला शिक्षा के समर्थक कम थे जैसा कि प्राप्त तथ्य के आधार पर यह भी कहा गया है कि नारियों को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी फिर भी ऐसा भी उद्धरण मिलता है कि नारियों को देवता के समान आदर मिला था। नारी के सम्बन्ध में मनु का कथन है कि "पितारक्षति कौमारे ..... न स्त्री स्वातन्त्र्यम् अर्हति।श्श् वहीं पर उनका कथन है "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताश्श्, भी द्रष्टव्य है। वस्तुतः यह समस्या प्राचीनकाल से रही है। इसमें धर्म, संस्कृति, साहित्य,

परम्परा, रीतिरिवाज और शास्त्र को कारण माना गया है। भारतीय दृष्टि से इस पर विचार करने की जरूरत है। पश्चिम की दृष्टि विचारणीय नहीं हो सकता। भारतीय सन्दर्भों में समस्या के समाधान के लिए प्रयास तो अच्छे हुए हैं। क्योंकि भारतीय मनीषा समानाधिकार, समानता, प्रतियोगिता की बात नहीं करती बल्कि वह सहयोगिता, सहधर्मिता, सहचारिता की बात करती है। इसी से परस्पर सन्तुलन स्थापित हो सकता है। जिससे यह कहना समुचित प्रतीत होता है कि वैदिक कालीन भारत में नारियों की शिक्षा गरिमामयी उपस्थिति दर्ज करता है। बौद्धकालीन व मुस्लिमकालीन शिक्षा नारियों के लिए अवनति की ओर रहा। यद्यपि महिलाओं के पुनरुत्थान का काल ब्रिटिश काल से शुरू होता है। ब्रिटिश शासन की अवधि में हमारे समाज की सामाजिक व आर्थिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन किए गए। ब्रिटिश शासन के 200 वर्षों की अवधि में स्त्रियों के जीवन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अनेक सुधार आये। औद्योगीकरण, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक आन्दोलन व महिला संगठनों का उदय व सामाजिक विधानों ने नारियों की दशा-दिशा में बड़ी सीमा तक सुधार की ठोस शुरूआत की। जहाँ से नारी शिक्षा का विकास क्रम उतरोत्तर प्रगति पथ पर प्रशस्त है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. *अग्रवाल, चन्द्रमोहन, भारतीय नारी रू विविध आयाम, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा*
2. *अग्रवाल, जे. सी. (2009) भारत में नारी शिक्षा. प्रभात प्रकाशन. ISBN 978.8185828770*
3. *आहुजा, राम ( 1999), भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, जयपुर*
4. *कस्तवार, रेखा (2006), स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण*
5. *जे. पी. सिंह (2016), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. PHI Leading Pvt. Ltd. ISBN 978.81.203.3232.2*
6. *मिश्र, जयशंकर (2006), प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना*
7. *राजकुमार (2005), नारी के बदले आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस*
8. *शर्मा, गजानन, प्राचीन साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद*
9. *श्रीवास्तव, सुरेश लाल (2007), राष्ट्रीय महिला आयोग, कुरूक्षेत्र*
10. *स्वप्निल, सारस्वत (2005), महिला विकास एक परिदृश्य, राधा प्रकाशन नई दिल्ली*
11. *सिंह, करण बहादुर (2006), महिला अधिकार व सशक्तिकरण, कुरूक्षेत्र*
12. *सिंह, विकास (2018), नारी शिक्षा रू अतीत से वर्तमान तक, राज पब्लिकेशन, ISBN 978.9382281719*